साहित्य अकादेमी राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था है, जिसकी स्थापना भारत सरकार ने सन् १९५४ में की थी। यह एक स्वायत्त संस्था है, जिसकी नीतियाँ अकादेमी की परिषद् द्वारा निर्धारित होती हैं। परिषद् में विभिन्न भारतीय भाषाओं, राज्यों और विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि होते हैं।

साहित्य अकादेमी का प्रमुख उद्देश्य है भारतीय भाषाओं की साहित्यिक गतिविधियों का समन्वयन और उन्नयन करना और अनुवादों के माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध उत्तम साहित्य को समग्र देश के पाठकों तक पहुँचाना। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य अकादेमी ने एक विस्तृत प्रकाशन-योजना हाथ में ली है। इस योजना के अंतर्गत जो ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं उनकी सूची साहित्य अकादेमी के विक्रय-विभाग से प्राप्त की जा सकती है।

ए. आर. राजराज वर्मा

के. एम. जॉर्ज

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के निर्माता

ए० आर० राजराज वर्मा

लेखक
के० एम० जॉर्ज

अनुवादक
माहेश्वर

साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली

A.R. RajaRaja Varma : Hindi Translation by *Maheshwar* of K.M. George's English monograph. Sahitya Akademi, New Delhi (1980).
SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

मूल्य : SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

© साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण : १९८०

साहित्य अकादेमी
रवींद्र भवन, ३५, फ़ीरोजशाह रोड, नई दिल्ली-११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय
रवींद्र सरोवर स्टेडियम, ब्लाक v-बी, कलकत्ता-७०००२९

१७२, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-४०००१४

२९, एलडाम्स रोड (दूसरा तल्ला), तेनम्पेठ, मद्रास-६०००१८

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, ४/११५, विश्वासनगर, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

आभार

मैं डॉ० के० पी० के० मेनन और डॉ० के० अय्यप्प पणिक्कर को मूल्यवान परामर्श देने और पांडुलिपि पढ़ने के लिए धन्यवाद देता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं ए० आर० राजराज वर्मा के पुत्र प्रोफ़ेसर राघव वर्मा का आभारी हूँ, जिन्होंने घरेलू और साहित्यिक संदर्भों में मेरे कतिपय संदेहों का निवारण किया।

के० एम० जॉर्ज

अनुक्रम

१. पृष्ठभूमि	९
२. रचनाकाल	१३
३. शिक्षक और शोधकर्त्ता	२१
४. जीवन का चरमोत्कर्ष	२७
५. भाषा और साहित्य संबंधी कृतियाँ	३३
६. अनुवाद	४५
७. रचनात्मक और आलोचनात्मक लेखन	५१
८. साहित्यिक पुनर्जागरण के अग्रदूत	५८
घटनाक्रम	६८
संदर्भ ग्रंथसूची	७०

अध्याय १

पृष्ठभूमि

यदि हम सदियों में पनपे किसी साहित्य के इतिहास की परख करें तो उसमें हमें कई तरह के उतार-चढ़ाव और विफलता-प्रभावहीनता के बीच फलवत्ता एवं प्राणवत्ता की झलक मिलेगी। प्रगति निरंतर एक सीध में नहीं होती, क्योंकि विकास और विघटन की अवधि बदलती रहती है। मलयालम साहित्य भी इस नियम का अपवाद नहीं है। मलयालम साहित्य की युगान्तरकारी घटनाएँ चेरुशशेरि (१५वीं सदी), तुंचत्तु एषुतच्चन (१६वीं सदी), कुंचन नाम्बियार (१८वीं सदी), और उन्नायी वारिएर सरीखे महापुरुषों के इर्द-गिर्द घूमती रही हैं। इन महान् कवियों की रचनाएँ अपने रूपगत आकार, विषयवस्तु और विचारों में श्रेष्ठ हैं। कम प्रतिभा वाले कतिपय लेखकों ने इन लोगों का अनुसरण किया है, तथा अधिकांश ने इन महापुरुषों की विशिष्ट रचनाओं का अनुकरण करने की भी कोशिश की है।

इस बात पर आम सहमति है कि मलयालम साहित्य में सर्वप्रथम रचना का समय १५वीं सदी से पहले का है जब चेरुशशेरि नम्बूदिरी ने 'कृष्णगाथा महाकाव्य' की रचना की। इस अवधि में हमें साहित्यिक मलयालम किशोरावस्था में दिखता है जिसपर संस्कृत तथा तमिल जैसे विकसित साहित्य का शक्तिशाली प्रभाव पड़ रहा था। साथ ही इस अवधि में हमें लोकगीतों की विशाल संपदा दिखती है जिसकी भाषा मुख्यतया बोलचाल की है। वस्तुतः उस समय तीन तरह की विशिष्ट साहित्यिक धराएँ थीं जिन्होंने केरल के लिए एक पारंपरिक भाषा का निर्माण किया था। ये धाराएँ थीं : (१) देशज (२) तमिल और (३)संस्कृत। यदि 'रामचरितम्' में वर्णित काव्यबंध 'पाट्टु' शैली तमिलधारा की है तो प्रारंभिक 'मणिप्रवाल' का काव्यबंध संस्कृत धारा से संबद्ध है।

इन तीनों समकालीन शैलियों या धाराओं में गहराई और वैशिष्ट्य को लेकर अंतर था परंतु उनका एक दूसरे पर प्रभाव था। अपनी मिट्टी से जुड़ी पहली धारा मंद और रंगहीन होने के बावजूद स्पष्ट और तीव्रगामी थी जबकि दूसरी धारा रंगहीन और मुखर। तीसरी धारा गहरी किंतु थोड़े से विद्वज्जनों के

लिए उपयोगी थी और उसमें उथल-पुथल एवं वागाडंबर का समावेश था। १४वीं सदी के 'उण्णुनीलीसंदेशम्' और 'कण्णशशन पाट्टुकला' में इन तीन धाराओं की अंतःक्रिया स्पष्ट दिखाई पड़ती है। जो भी हो, 'कृष्णगाथा' में एक नई शैली का विकास है जिससे हमें विभिन्न शैलियों में स्वस्थ ढलाव और बोलचाल के रूपगढ़न का संकेत मिलता है।

अन्य सम्प्रदायों, विशेषकर संस्कृत, के सर्वोत्तम साहित्य को स्वीकारने और उससे जुड़ने की प्रवृत्ति भी तुंचत्तु एपत्तच्चन के हाथों अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई। उन्होंने शीघ्र ही पारंपरिक मलायलम को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया। उनकी 'रामायणम्' और 'महाभारतम्' रचनाएँ अपनी विशिष्ट साहित्यिक श्रेष्ठता और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के कारण मलयालम पाठकों को सदा के लिए अभिभूत कर लेती हैं।

मलयालम के साहित्यिक-क्षेत्र में दूसरे शिखर की झलक लगभग एक सदी के बाद मिलती है। वस्तुतः यहाँ हमें दो शिखर एक साथ दिखते हैं। प्रथमतः कथकली साहित्य के पुरोधा उन्नायी वारिएर हैं जिनका 'नल चरितम् आट्टक्कथा' अपने नाटकीय तत्त्वों और मौलिकता के लिए प्रसिद्ध है। इस नाटक का मंचन चार दिनों में ही संभव था। कथकली एक महान् कलाशैली थी परंतु पूरे आनंद के लिए इसके प्रेक्षकों का सूक्ष्मदर्शी होना आवश्यक था। अदम्य उत्साही तथा तीक्ष्णबुद्धि वाले कुंचन नम्बियार ने जनता की आवश्यकता को महसूस करते हुए 'तुल्लल' नामक कथाशैली को विकसित किया और पर्याप्त मात्रा में ऐसे साहित्य को प्रस्तुत किया जिससे असंस्कृत तथा सुसंस्कृत दोनों ही आनंद उठा सकते थे। हालांकि उन्होंने पौराणिक विषयवस्तु अपनाई, परंतु उनकी प्रतिभा ऐसी थी कि प्रत्येक पदसमूह समकालीन तथा आश्चर्यजनक रूप से आनंददायी प्रतीत होते थे। उनका संबंध १८ वीं सदी से था।

इन महापुरुषों की मौलिकता ऐसी थी कि न केवल वे रूपवादी प्रणाली से ऊपर उठे बल्कि अपना कुछ योगदान भी दिया। कुंचन नम्बियार से १९वीं सदी के मध्य तक का समय मलयालम साहित्य का अपेक्षाकृत अनुर्वर काल था। आगे चलकर हमें कई लेखक आगे आते मिलते हैं, परंतु उनमें से अधिकांश संस्कृत परंपरा की लीक से बंधे रहे। इन्होंने 'महाकाव्य', 'चम्पू' और 'संदेशकाव्य' की शास्त्रीय पद्धतियों में अपने साहित्यिक प्रयोग किए। साथ ही साथ हमें उनपर पश्चिमी साहित्य का प्रभाव भी दिखता है। कुछ ने संस्कृत शब्दों और रूपों को अपनी रचना में निगमित करते हुए अलंकार शैली का प्रचार किया। दूसरों ने आम बोलचाल की सरस और ओजपूर्ण शैली का प्रयोग करते हुए शुद्ध भाषा को बेहतर समझा।

साहित्यका स्वर्ण काल

१८५० के बाद के छः दशकों में हमें काव्य और गद्य के कई प्रमुख लेखक मिलते हैं जिनमें विशिष्ट निम्नवत् हैं :

केरल वर्मा (१८४५-१९१५)—कवि और विद्वान्
ए० आर० राजराज वर्मा (१८६३-१९१८)—आलोचक और विद्वान्
कोदुंगल्लूर कुंजिकुट्टन तम्पुरान (१८६५-१९१३)—कवि और अनुवादक

चंदु मेनन (१८४७-१९००)
सी० व्ही० रामन पिल्लै (१८५८-१९२२)
] उपन्यासकार

कुमारन आशान (१८७३-१९२४)
उल्लूर (१८७७-१९४९)
वल्लत्तोल (१८७८-१९५८)
] आधुनिक युग के कवि

यहाँ हम देखते हैं कि उपर्युक्त सभी विद्वान् १९ वीं सदी (अधिकांश उत्तरार्द्ध) में पैदा हुए और उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ १८८० से १९३० के बीच लिखी गईं। इस अवधि को मलयालम साहित्य में पुनर्जागरण काल कहा जा सकता है। यदि व्यापक अर्थों में लें तो मलयालम साहित्य में १८५० के बाद का समय स्वर्णकाल है।

हालांकि हमने केवल आठ साहित्यकारों का उल्लेख किया है परंतु कई अन्य भी हैं जिनका विशेष योगदान है। मलयालम साहित्य के उपवन में इस काल में सैकड़ों फूल खिले जिन्होंने इसे एक वास्तविक वसंत दिया। नए रूप और विषयवस्तु, नये दृष्टिकोण और नई अंतर्दृष्टि के साथ यद्यपि कई लोगों ने सामान्य जागरण के विकास में योगदान दिया परंतु वास्तविक पथप्रदर्शक कुछ ही व्यक्ति थे। इनमें केरल वर्मा वलिया कोइल तम्पुरान और उनके भतीजे ए० आर० राजराज वर्मा तम्पुरान का स्थान अप्रतिम है। इन्हें साहित्य में इस नए युग का उत्तुंग शिखर माना जाता है।

केरल वर्मा को साहित्य सम्राट माना जाता था। संस्कृत और मलयालम में अपनी गहन विद्वता, अपने काव्यात्मक अवदान, साहित्य और शिक्षा की सेवा में अपनी अभिरुचि तथा साथ ही सत्तारूढ़ परिवार का नज़दीकी संबंधी होने के कारण उन्हें जो प्रतिष्ठा मिली वह उनसे पहले या बाद में, अन्य किसी को नहीं मिली। कवि के रूप में उन्होंने संस्कृत परंपरा के आनंद और गांभीर्य का आस्वाद लिया था परंतु वह अंग्रेजी ढंग की शिक्षा से भी प्रभावित थे और पाठ्यक्रम समिति के सदस्य की हैसियत से उन्होंने छात्रों को सीधी-सरल गद्य-रचना के लिए उत्साहित किया। परंतु अभिजनों के लिए साहित्य लिखते समय उन्होंने स्वयं अलंकृत और बनावटी शैली में लिखना उचित समझा जैसा कि

उनके 'अकबर' उपन्यास में दिखता है। ए० आर० राजराज वर्मा वैयाकरण, कवि और आलोचक थे। उनके दिल में अपने चाचा के लिए विशेष सम्मान था। परंतु साहित्य रचना तथा मूल्यांकन के विविध पक्षों को लेकर दोनों में मौलिक असहमति थी। अगले अंशों में हमें संस्कृत रूपवाद की प्रासंगिकता और कल्पना तथा आलंकारिता के संदर्भ में दोनों की मान्यताओं को परखने का अवसर मिलेगा।

मलयालम साहित्य के वृहत् इतिहास (केरल साहित्यचरित्रम्-खंडः ५) में महाकवि उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर ने निम्नलिखित शब्दों में ए० आर० राजराज वर्मा की उपलब्धियों और उनके जीवन का चित्रण किया है :

'यदि अन्यों ने मलयालम साहित्यागार की दीवारों को अपनी रंगकला और चित्रकला से विभूषित किया तो ए० आर० ने उसकी नींव और शिखर पर श्रम किया तथा उसे केरल की जनता के हित के लिए चित्ताकर्षक और चिरस्थायी बनाया। उनकी प्रसिद्धि इसी स्थापत्य-विषयक कौशल पर आधारित है और हमेशा रहेगी। आधुनिक युग में केरल में ऐसा कोई अन्य साहित्यकार नहीं हैं जिसमें पर्यवेक्षण, मौलिकता तथा रुचिसम्पन्नता की इतनी विकसित शक्ति मौजूद है। ऐसे महामानव किसी भी काल और स्थान में विरले ही होंगे।'

अध्याय २

रचनाकाल

जिस व्यक्ति के बारे में हम अध्ययन कर रहे हैं उनका पूरा नाम ए० आर० राजराज वर्मा कोइत्तम्पुरान था। राज, वर्मा, तम्पुरान और कोइत्तम्पुरान (कोइल + तम्पुरान) आदि पदों का (तम्पुरान = स्वामी—एक सम्मान-सूचक संज्ञा—जिसका संबंध राजपरिवार या मंदिरों से है—कोइत्तम्पुरान = राजकुमारी के पति के लिए संबोधन) संबंध राजपरिवार से है और ये पद सत्तारूढ़ वर्ग अर्थात् क्षत्रियों से निकट संबंध के द्योतक हैं। ये पद मलयालम साहित्य में प्रधान रूप से पाए जाते हैं जिससे पता चलता है कि इस छोटे-से समूह ने केरल के सांस्कृतिक जीवन में कितना अधिक योगदान दिया है। राजराज वर्मा का जन्म १८६३ में त्रिवेन्द्रम् से १४० किलोमीटर उत्तर एक घनी आबादी वाले नगर चंगनाशेरि के लक्ष्मीपुरम महल में हुआ था। मालाबार संवत् के अनुसार उनकी जन्मतिथि ९ कुंभम् १०३८ है। वहाँ जन्म के नक्षत्र के साथ राजपरिवार के व्यक्ति का नामकरण करने की प्रथा है और वर्तमान संदर्भ में यह नाम 'पूरूरुट्टदि' (पूर्वभाद्रम-२५वां नक्षत्र) है।

चंगनाशेरि के कोइत्तम्पुरानों का दक्षिणी मालाबार में परप्पूर स्वरूपम् के साथ पारिवारिक संबंध था। यह वंश अपनी प्रतिष्ठा तथा पारंपरिक संस्कृति के लिए प्रसिद्ध था। इतिहास में हैदरअली के आक्रमण के समय अत्याचार से बचने के लिए १७६८ में मालाबार से लोगों के ट्रावनकोर भागने का उल्लेख मिलता है। परप्पूर स्वरूपम् के कई परिवारों ने उस समय भाग कर ट्रावनकोर राज्य में शरण ली थी। ट्रावनकोर के परोपकारी महाराजा ने उनके साथ इतना अच्छा व्यवहार किया कि क्षेत्र में शांति कायम होने के बावजूद इस वर्ग के अधिकांश लोग वापस जाना नहीं चाहते थे। केवल यही नहीं, उन्हें ऐसा संरक्षण और उदारता देखने को मिली कि आगे चलकर सत्तारूढ़ परिवार की कई शाखाओं से वैवाहिक संबंध के प्रस्ताव भी आए। राजराज वर्मा का परिवार भी इन्हीं में से एक था।

राजराज वर्मा विशेष सुसंस्कृत माता-पिता की संतान थे। उनकी माता

कुंजिक्कवु तम्पुराट्टि साहित्य-सम्राट केरल वर्मा की मौसी की पुत्री थी। वह अत्यन्त अच्छे स्वभाव की महिला थीं। उनके पिता पट्टियल इल्लम के वासुदेवन नम्बूदिरी वेदों के महान् ज्ञाता और रसिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन दिनों नंबूदिरियों के वैवाहिक संबंध नायर या क्षत्रियों के प्रतिष्ठित परिवारों से होते थे।

जब कोच्चप्पन (बचपन में राजराज वर्मा का यही नाम था) दो वर्ष के थे तब लक्ष्मीपुरम् महल में किसी गंभीर वैचारिक मतभेद तथा विवाद के कारण परिवार के कुछ सदस्यों ने चंगनाशेरि से २० किलोमीटर दूर कार्त्तिकपल्ली में जाकर बसने का निश्चय किया। यहाँ केरल वर्मा और उनके बड़े भाई के सामने कई तरह की कठिनाइयाँ आईं। बाद में लोग सत्तारूढ़ महाराज की सहायता से हरिप्पाट में एक नए मकान में चले आए। इस नए मकान का नाम 'अनन्तपुरम् महल' रखा गया। यहीं हमारे साहित्य-नायक का बचपन व्यतीत हुआ।

विद्वान् चाचा और कृपालु माता की स्नेहपूर्ण छाया में हालांकि कोच्चप्पन का यह समय कुल मिलाकर खुशहाल रहा परन्तु दो बार दुर्घटनाओं में उनकी जान जाते-जाते बची थी। एक बार तो वह डूबने से बचे। बरसात में घर के निकट स्थित एक तालाब में किसी समय कोच्चप्पन के दिल में अपने एक चचेरे भाई के साथ नौका-विहार की इच्छा हो आई। नाव पर बच्चों के सहायक के रूप में बस एक नौकरानी थी। छोटी-सी नाव उलट गई और तीनों बच्चे उससे लुढ़क गए। किनारे पर बचाकर लाए जाते-जाते बच्चे मृतप्राय-से हो गए थे परन्तु सौभाग्यवश, उचित तरीके से प्राथमिक उपचार के बाद वे बच गए। कोच्चप्पन उस समय मुश्किल से सात वर्ष के होंगे। आगे चलकर उन्हें डूबने की तथा तालाब में ले जाने के लिए नौकरानी पर डांट पड़ने की घटना याद आई।

दूसरी घटना उस समय हुई जब कोच्चप्पन किसी बाग में खेलकूद रहे थे और वहाँ सांप भरे पड़े थे। उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि दाहिने पैर में किसी तेज चीज से चोट लगी हो। शीघ्र ही उन्हें पैर में भारीपन प्रतीत हुआ, फिर भी वह दौड़ कर घर तक गए। कोई गंभीर चोट तो दिखाई नहीं पड़ीं परन्तु पैर में लगातार दर्द बना रहा। संभवतः उन्हें सांप ने काट खाया था। किसी तरह सौभाग्य से वह बच गए।

प्रारम्भिक शिक्षा

राजराज वर्मा की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पारंपरिक तरीके से सुविज्ञ शिक्षकों की देख-रेख में हुई थी। प्रथम गुरु चुनक्करा अच्युत वारियर और शंकर वारियर रहे। इन्होंने उन्हें तीन तरह के दैविक नियमों का ज्ञान कराया। इसके बाद संस्कृत काव्यों का अध्ययन करना था। परन्तु लड़का खिलाड़ी तबियत का और दुष्ट स्वभाव का था तथा पढ़ाई की अपेक्षा खेल में उसकी ज्यादा दिलचस्पी

थी। उस समय के लोकप्रिय खेलों में उसकी विशेष दक्षता के कारण उसके छोटे साथियों ने उसे अपना नेता मान लिया था और वह स्वस्थ युवक सहज ही अपने साथियों के बीच चमकने लगा। हालांकि वह पढ़ाई पर ज्यादा ध्यान नहीं देता था परन्तु मेधा तथा समझदारी के बल पर शिक्षकों द्वारा बताए गए सारे पाठ शीघ्र ही हृदयंगम कर लेता था। इसलिए शिक्षक भी उसे चाहते थे।

इस समय तक राजराज वर्मा के चाचा केरल वर्मा, जो उनसे १८ वर्ष बड़े थे, प्रतिभाशाली लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। परंतु सत्तारूढ़ राजकुमार के साथ कुछ विवाद हो जाने के कारण वह नजरबन्द थे। अतः उन्हें अलेप्पी से हरिप्पाट भेजा गया। यह दुःखद घटना मलयालम साहित्य के लिए लाभकारी सिद्ध हुई और राजराज वर्मा को अपने प्रतिभाशाली चाचा से ही काव्यबंध और संस्कृत की शिक्षा मिलने लगी। इससे भतीजे के व्यक्तित्व के सही विकास में और उसमें शैक्षिक मनोवृत्ति के निर्माण में सहायता मिली। अपरंच, केरल वर्मा के कटु अनुभव ने उनसे 'मयूर संदेशम्' की रचना करवाई। यह एक प्रसिद्ध सन्देश-कविता है, जो कवि के संगी को संबोधित है, जिससे राजकीय अप्रसन्नता के कारण कवि को अलग होना पड़ा था।

राजराज वर्मा को छः वर्षों तक (१८७५-१८८१) अपने चाचा से काव्य-अध्ययन और काव्य-रचना में निर्देश तथा सहायता प्राप्त हुई। उनके दो अन्य शिष्य भी थे जो निकट के संबंधी थे। जिस तरीके से राजराज वर्मा ने अपने पाठ सीखे और उनकी प्रतिभा में निखार आया वह एक विशेष घटना से संबद्ध है। इसका यहाँ उल्लेख आवश्यक है। एक दिन शिक्षक ने अपने तीनों शिष्यों को गणपति को आधार बनाकर 'अष्टकम्' (आठ पद) की रचना करके अगले दिन तीन बजे तक लाकर दिखाने का आदेश दिया। अन्य दो शिष्यों ने तुरन्त काम शुरू कर दिया। वे पद रचना में अपना सिर खपाए रहे और श्रमपूर्वक प्रयास करते रहे। खिलाड़ी बुद्धि के कोच्चप्पन को अन्तिम क्षण तक सबक का ध्यान न रहा। जब दो बज गए तो उन्हें सबक का ख्याल आया और कुछ तुकबन्दी उन्होंने शुरू की। बाद में शिक्षक नियत समय पर आ गए और राजराज वर्मा अपने साथियों के साथ वहाँ पहुंचे। पहले शिष्य की रचना में अशुद्धियाँ थीं पर उसे माफ़ कर दिया गया। दूसरे को संतोषजनक काम दिखलाने पर शाबाशी मिली। इसके बाद भयभीत और आशंका से भरे राजराज वर्मा सामने आए। कहे जाने पर उन्होंने हिचकिचाहट के साथ 'अष्टकम्' पढ़ा। उन्हें फिर पढ़ने के लिए कहा गया। इसके बाद शिक्षक ने उनसे कहा कि वह शिक्षक द्वारा रचित 'अष्टकम्' ले आएं और उसे सस्वर पढ़ें। इसके बाद दोनों एक दूसरे की तरफ़ देखकर हंस पड़े क्योंकि विषयवस्तु और रूप—दोनों संदर्भों में शिक्षक और शिष्य की रचना में विशेष अनुरूपता थी। भतीजे के कौशल पर चाचा

मुग्ध हो गए और भतीजे में गर्व का संचार हुआ। इसके बाद शिक्षक ने एक और चाल चली। उन्होंने दोनों तुकबंदियों को लिखकर उनके बड़े भाई के पास भेजा और लेखक के नाम का संकेत नहीं किया। विद्वान् भाई ने सिद्धहस्त कवि और अपने भाई की तुकबंदी को सहज ही पहचान लिया; साथ ही दूसरे अपरिचित कवि को शाबाशी दी और घोषित किया कि दूसरा अष्टकम् भी उतना ही बेहतर है। बाद में जब नए कवि का परिचय प्रकट हुआ तब हर व्यक्ति ने इस मजाक का आनन्द उठाया और राजराज वर्मा को अच्छे उपहार मिले। यह सब उस अवधि की घटनाएँ हैं जब वह केवल १५ वर्ष के थे।

एक अन्य रोचक घटना श्री एलात्तूर रामस्वामी शास्त्रिकल के महल में आगमन से संबंधित है। श्री शास्त्रिकल केरल वर्मा के गुरु थे और अपने शिष्य के शिष्यों की क्षमता और प्रतिभा को परखना चाहते थे। उन्होंने 'कुवलयानन्दम्' 'अद्यपि तिष्ठति···' से प्रारंभिक श्लोक पढ़ने और इसकी व्याख्या करने के लिए शिष्यों से कहा। राजराज वर्मा ने जिस तरीके से कतिपय पंक्तियों की व्याख्या की और उनकी आन्तरिक सूक्ष्मता को उभारा उससे वृद्ध शिक्षक महोदय चकित रह गए। उन्होंने लड़के को शाबाशी दी। इस तरह के उत्साह पाने से स्वभावतः ही युवक 'सहृदय' को विकसित होने में मदद मिली।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कम उम्र में ही राजराज वर्मा में संस्कृत काव्य-रचनाधर्मिता की प्रतिभा फूट पड़ी। उन्होंने संस्कृत व्याकरण और अलंकारशास्त्र का भी अध्ययन किया और संस्कृत में ऐसी कविताएँ करनी शुरू कीं जिसकी खबर केवल परिवार के ही पारखियों तक नहीं पहुंची बल्कि ट्रावनकोर के महाराज का स्वयं अपने प्रिय चाचा से परिचय हुआ।

१८८० में जब श्री विशाखम तिरुनाल ट्रावनकोर के शासक हुए तब केरल वर्मा का भाग्य पलटा और अनन्तपुरम् महल के सदस्यों को अपेक्षित उत्साह प्राप्त हुआ। शीघ्र ही केरल वर्मा ने अपना आवास त्रिवेन्द्रम में बदल लिया और विशाखम तिरुनाल से, जो एक लेखक और विद्वान् भी थे, निकट रूप में संबद्ध हो गए। यह भी सुझाव आया कि विकासमान कवि ए० आर० भी त्रिवेन्द्रम आकर अपना अध्ययन जारी रखें। राजराज वर्मा दो अन्य छात्रों के साथ त्रिवेन्द्रम के 'चंगनाशेरि मूत्ततु मठम' में रहने लगे और हाई स्कूल में नियमित छात्र के रूप में औपचारिक शिक्षा पूरी की। यहाँ यह बताने की जरूरत नहीं है कि इन सब चीजों का प्रबन्ध केरल वर्मा ने किया था और वह अदम्य उत्साह के साथ उनका मार्गदर्शन करते रहे।

हाईस्कूल में उनकी पढ़ाई १८८१ के बाद तक जारी रही। हालांकि राजराज वर्मा पढ़ाई में तेज थे परंतु उनके कुछ कमजोर पक्ष भी थे। अंकगणित उनके लिए एक हौआ था। परन्तु अंकगणित में नौ से कम अंक पाने के बावजूद

उन्हें औसतन ७० प्रतिशत अंक प्राप्त होते थे। अतः अंग्रेज प्रधानाचार्य की सिफ़ारिश पर विशेष रूप से उनकी प्रोन्नति उच्च कक्षा में हुई। उन्होंने द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत को चुना, लेकिन उन्हें मलयालम भी पढ़ना पड़ा। यहीं आकर मलयालम व्याकरण की ओर पहली बार उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। संस्कृत में उनकी ऐसी पैठ थी कि मुंशीजी उन्हें अपने बराबर मानते थे। कई जटिल मुद्दों पर वे एक दूसरे से परामर्श करते। उन दिनों मलयालम भाषा का स्थान गौण था और संस्कृत के लिए उत्सुक राजराज वर्मा भी ऐसा होना ही सही समझते थे। मातृभाषा के प्रति उनकी ऐसी धारणा के पीछे यह कारण भी था कि मलयालम की पाठ्य-पुस्तकें काफ़ी नीरस ढंग की थीं।

प्रबुद्ध महाराजा नई प्रतिभाओं को प्रेरित करना चाहते थे। एक विशेष संदर्भ में उन्होंने एक आकर्षक पुरस्कार की घोषणा की जो उनके द्वारा निर्दिष्ट विषय पर संस्कृत में सर्वोत्तम लेख लिखने वाले को दिया जाने वाला था। छात्रों को आठ पृष्ठ का लेख लिखना था। लेखों को पहले महाराजा स्वयं जांचते थे और फिर उन्हें केरल वर्मा के पास भेजा जाता। हमारे युवा कवि भी इसमें प्रतियोगी थे। केरल वर्मा और महाराज दोनों इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि राजराज वर्मा का लेख सर्वोत्तम है। यह एक दूसरी घटना थी जिससे उच्च पदाधिकारियों की रुचि उस युवा लेखक में बढ़ी। हाई स्कूल में उनकी पढ़ाई चल ही रही थी और इससे केरल वर्मा को अपने भतीजे को संस्कृत की उच्च शिक्षा देने का अवसर मिला।

विश्वविद्यालय की शिक्षा

खेल-कूद में रुचि रखने के वाले राजराज वर्मा त्रिवेन्द्रम में अपने मित्रों के साथ आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। फिर भी, मैट्रिक की परीक्षा में वह बिना किसी कठिनाई के उत्तीर्ण हो गए। इसके बाद जब वह विश्वविद्यालय में पढ़ने की शुरुआत ही कर रहे थे कि अचानक एक गम्भीर विपत्ति आ पड़ी। उनकी माता का (१८८४) देहांत हो गया और इससे उन्हें काफी ठेस लगी। प्यारी माँ का देहांत होने से उन्हें जो तकलीफ़ हुई उससे एक वर्ष तक उन्हें अपने औपचारिक अध्ययन से विरत होना पड़ा क्योंकि प्रथा के अनुसार सार्वजनिक क्रियाकलापों पर पाबंदी थी। एक वर्ष तक उन्होंने हजामत नहीं कराई और घर में कई तरह की रीतियों का पालन करते रहे। वह अपने अध्ययन का एक वर्ष नष्ट नहीं करना चाहते थे और उन्होंने केरल वर्मा तथा अन्यों को अपनी स्थिति स्पष्ट की। किसी में इतना साहस नहीं था कि उन्हें स्थापित परंपराओं के विपरीत जाने की सलाह देता। अन्त में यह समस्या महाराज के सामने आई। उन्होंने उसे इस तरह सुलझाया कि सभी सहमत हो गए और राहत की सांस मिली।